IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 2, March 2026
Impact Factor: 8.2

नाटक-लक्षणरत्नकोश ऐवं नाटकचन्द्रिका में नाटक-लक्षणों की परिभाषा ऐवं वर्गीकरण : एक तुलनात्मक विवेचन

लाली कुमारी

विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार

सारांश

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में नाटक-लक्षणरत्नकोश तथा नाटकचन्द्रिका में प्रतिपादित नाटक-लक्षणों की परिभाषा एवं वर्गीकरण-प्रणाली का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। संस्कृत नाट्यशास्त्रीय परम्परा में नाटक को रूपक का प्रधान भेद मानते हुए उसकी संरचना, उद्देश्य तथा सौन्दर्यशास्त्रीय आधारों पर विविध आचार्यों द्वारा भिन्न-भिन्न लक्षण प्रस्तुत किए गए हैं। इसी परम्परा में नाटक-लक्षणरत्नकोश और नाटकचन्द्रिका दो महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं, जिनमें नाटक के स्वरूप, तत्त्व और वर्गीकरण को विशिष्ट दृष्टिकोण से व्याख्यायित किया गया है।

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य इन दोनों ग्रंथों में उपलब्ध नाटक-लक्षणों की अवधारणा, उनकी परिभाषात्मक संरचना तथा वर्गीकरण के आधारों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना है। अनुसंधान में यह स्पष्ट किया गया है कि नाटक-लक्षणरत्नकोश जहाँ लक्षणों को अपेक्षाकृत नियमात्मक एवं सूत्रात्मक शैली में प्रस्तुत करता है, वहीं नाटकचन्द्रिका व्याख्यात्मक तथा विवेचनात्मक दृष्टिकोण को अधिक महत्व प्रदान करती है। दोनों ग्रंथों में नाटक की परिभाषा के अंतर्गत वस्तु, नायक, रस, संधि, वृत्ति तथा अभिनय जैसे तत्त्वों की भूमिका स्वीकार की गई है, किन्तु इनके प्रस्तुतीकरण और वर्गीकरण की पद्धति में वैचारिक भेद परिलक्षित होता है।

अध्ययन-पद्धति के रूप में पाठालोचन, संदर्भ-विश्लेषण तथा तुलनात्मक पद्धति को अपनाया गया है। इस शोध के निष्कर्ष यह संकेत करते हैं कि दोनों ग्रंथ नाटक-लक्षण की शास्त्रीय परम्परा से जुड़े रहते हुए भी अपने-अपने ढंग से नाट्यशास्त्रीय चिन्तन को समृद्ध करते हैं। अतः यह तुलनात्मक विवेचन संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाटक-लक्षण की बहुआयामी समझ को विस्तारित करने में सहायक सिद्ध होता है।

मुख्य शब्द: नाटक-लक्षण, रूपक, नाट्यशास्त्र, नाटकचन्द्रिका, नाटक-लक्षणरत्नकोश, वर्गीकरण

1. भूमिका

संस्कृत नाट्यशास्त्र की परम्परा भारतीय काव्यशास्त्र की एक अत्यन्त समृद्ध एवं सुदीर्घ परम्परा रही है। इस परम्परा में नाटक को केवल काव्य का एक भेद न मानकर श्रव्य-दृश्य-कला के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसमें काव्य, अभिनय, संगीत और मंचीय विधान का समन्वित रूप दिखाई देता है। नाट्यशास्त्र से लेकर परवर्ती आचार्यों तक नाटक के स्वरूप, उद्देश्य एवं संरचनात्मक तत्त्वों पर व्यापक विचार हुआ है। इसी विचार-परम्परा में नाटक-लक्षण की अवधारणा अत्यन्त केन्द्रीय एवं निर्णायक महत्त्व रखती है।

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in
DOI: 10.48175/IJARSCT-31572

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 2, March 2026 Impact Factor: 8.2

नाटक-लक्षण का तात्पर्य उन विशिष्ट तत्त्वों और गुणों से है, जिनके आधार पर किसी काव्य-रचना को नाटक के रूप में पहचाना जाता है। परिभाषा एवं लक्षण के अभाव में नाटक और अन्य रूपकों अथवा उपरूपकों के मध्य स्पष्ट भेद करना सम्भव नहीं होता। अतः नाटक-लक्षण न केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, अपितु व्यावहारिक नाट्य-रचना एवं आलोचना के लिए भी अनिवार्य है। भारतीय नाट्यशास्त्र में आचार्यों ने नाटक की परिभाषा देते समय वस्तु, नायक, रस, संधि, वृत्ति तथा अभिनय जैसे तत्त्वों को केन्द्र में रखा है [1]।

भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित नाट्य-संरचना को आधार बनाकर परवर्ती आचार्यों ने नाटक के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट किया। नाटक को लोक-वृत्त का अनुकरण मानते हुए उसके उद्देश्य को लोकशिक्षा, लोकानन्द तथा रसानुभूति से जोड़ा गया। इस सन्दर्भ में नाटक की परिभाषा केवल शाब्दिक न होकर दार्शनिक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय आयामों को भी समाहित करती है। नाटक-लक्षण के माध्यम से ही यह स्पष्ट होता है कि नाटक किस प्रकार दर्शक के चित्त में रस का संचार करता है और मानवीय अनुभूतियों को मंच पर सजीव रूप प्रदान करता है।

नाटक-लक्षण के साथ-साथ नाटक-वर्गीकरण की समस्या भी नाट्यशास्त्र में विशेष महत्व रखती है। वर्गीकरण का उद्देश्य नाटक के विविध रूपों को सुव्यवस्थित करना तथा उनके अध्ययन को सुगम बनाना है। दशरूपक परम्परा में नाटक को प्रधान रूप मानते हुए अन्य रूपकों का वर्गीकरण किया गया है [2]। नाटक के भीतर भी विषय-वस्तु, नायक-भेद, रस-प्रधानता, अंकों की संख्या तथा संधि-विन्यास जैसे आधारों पर विविध वर्गीकरण प्रस्तुत किए गए हैं।

नाटक-लक्षणरत्नकोश एवं नाटकचन्द्रिका ऐसे ही दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं, जिनमें नाटक-लक्षणों की परिभाषा एवं वर्गीकरण का विशद विवेचन प्राप्त होता है। इन दोनों ग्रंथों का काल, उद्देश्य तथा विवेचन-शैली भिन्न होने के कारण नाटक-लक्षण की प्रस्तुति में भी वैचारिक विविधता दिखाई देती है। नाटक-लक्षणरत्नकोश में लक्षणों को अपेक्षाकृत संक्षिप्त, सूत्रात्मक एवं नियमात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है, जबकि नाटकचन्द्रिका में वही लक्षण व्याख्यात्मक एवं विवेचनात्मक शैली में विस्तारपूर्वक निरूपित किए गए हैं।

1.1 अध्ययन के उद्देश्य

- नाटक-लक्षणरत्नकोश में प्रतिपादित नाटक-लक्षणों की परिभाषाओं का पाठालोचन एवं सैद्धान्तिक निरूपण करना।
- नाटकचन्द्रिका में प्रस्तुत नाटक-लक्षणों की परिभाषात्मक संरचना, शब्दार्थ तथा आशय का विश्लेषण करना।
- दोनों ग्रंथों में उपलब्ध नाटक-वर्गीकरण के मानदण्डों का तुलनात्मक अध्ययन कर उनके आधारभूत तत्त्वों को स्पष्ट करना।
- नाटक-लक्षणों के संदर्भ में दोनों ग्रंथों के मध्य प्राप्त समानताओं एवं भेदों को रेखांकित करना।
- परिभाषा एवं वर्गीकरण के भेदों के माध्यम से अंतर्निहित नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोणों एवं वैचारिक निहितार्थों का विश्लेषण प्रस्तुत करना।

इन उद्देश्यों के माध्यम से यह प्रयास किया गया है कि नाटक-लक्षण की अवधारणा को केवल परिभाषात्मक स्तर पर ही नहीं, अपितु उसके सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक आयामों के साथ समग्र रूप में समझा जा सके।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 2, March 2026
Impact Factor: 8.2

1.2 अनुसन्धान-पद्धति

प्रस्तुत शोध-कार्य में नाटक-लक्षण के विवेचन हेतु मुख्यतः गुणात्मक एवं ग्रंथाधारित अनुसन्धान-पद्धति को अपनाया गया है। इस अध्ययन का आधार संस्कृत नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों का सावधानीपूर्वक पाठालोचन एवं विश्लेषण है, जिसके माध्यम से नाटक-लक्षण की परिभाषाओं, वर्गीकरण-मानदण्डों तथा वैचारिक संरचना को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

अनुसन्धान की प्रथम अवस्था में नाटक-लक्षणरत्नकोश एवं नाटकचन्द्रिका के प्रामाणिक एवं उपलब्ध संस्करणों का चयन कर उनके मूल पाठ का सूक्ष्म पाठालोचन किया गया है। अनुसन्धान की द्वितीय अवस्था में तुलनात्मक पद्धति को अपनाते हुए दोनों ग्रंथों में प्रस्तुत नाटक-लक्षणों की परिभाषात्मक संरचना एवं वर्गीकरण-प्रणालियों का आपसी तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

अनुसन्धान की तृतीय अवस्था में सहायक एवं संदर्भ-ग्रंथों की समीक्षा की गई है। इसमें नाट्यशास्त्र, दशरूपक, साहित्यदर्पण तथा अन्य परवर्ती नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों एवं आधुनिक शोध-लेखों का उपयोग किया गया है। इस प्रकार पाठालोचन, तुलनात्मक विवेचन और संदर्भ-समीक्षा—इन तीनों पद्धतियों के समन्वय से यह शोध-कार्य नाटक-लक्षण की सम्यक् एवं व्यवस्थित समझ प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

2. सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि : नाटक-लक्षण की संकल्पना

संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाटक-लक्षण की संकल्पना नाटक की पहचान, संरचना एवं उद्देश्य को स्पष्ट करने का मौलिक आधार प्रदान करती है। नाटक को काव्य की अन्य विधाओं से पृथक करने के लिए आचार्यों ने कुछ विशिष्ट तत्त्वों का निर्धारण किया है, जिन्हें सामूहिक रूप से नाटक-लक्षण कहा जाता है। इन लक्षणों के अभाव में नाटक और अन्य रूपकों अथवा उपरूपकों के मध्य भेद करना कठिन हो जाता है।

नाट्यशास्त्रीय परम्परा में नाटक को लोकवृत्तानुकरण का सशक्त माध्यम माना गया है, जिसमें मानवीय भावों, संघर्षों और आदर्शों का मंचीय प्रस्तुतीकरण होता है। नाटक-लक्षण के अन्तर्गत नाट्य-तत्त्वों की भूमिका विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। इन तत्त्वों में वस्तु (कथावस्तु), नायक, रस, संधि, वृत्ति तथा अभिनय प्रमुख माने गए हैं।

नाटक-लक्षण की संकल्पना को समझने के लिए रूपक की अवधारणा का उल्लेख आवश्यक है। दशरूपक परम्परा में नाटक को रूपकों का प्रधान भेद स्वीकार किया गया है, जिसके अंतर्गत अन्य रूपक एवं उपरूपक विविध श्रेणियों में वर्गीकृत किए गए हैं [2]। अभिनय नाटक को काव्य से पृथक करने वाला सबसे प्रमुख तत्त्व है। भरतमुनि ने आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक—इन चार प्रकार के अभिनयों का विवेचन कर नाटक की मंचीय प्रकृति को स्पष्ट किया है।

2.1 शास्त्रीय आधार

नाट्यशास्त्र नाटक-लक्षण की संकल्पना का प्राचीनतम एवं सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। भरतमुनि ने नाटक को लोकवृत्त का अनुकरण बताते हुए उसकी परिभाषा को भाव, रस और अभिनय से जोड़ा है [1]। नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित सिद्धान्तों को आधार बनाकर परवर्ती आचार्यों

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 2, March 2026 Impact Factor: 8.2

ने नाटक-लक्षण को और अधिक स्पष्ट एवं सुव्यवस्थित किया। धनञ्जय के दशरूपक, विश्वनाथ के साहित्यदर्पण, मम्मट के काव्यप्रकाश तथा अभिनवगुप्त की अभिनवभारती में नाटक की परिभाषा एवं लक्षणों पर विविध दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं **[4,5]**।

नाट्यं भिन्नरसो भावो नानावस्थान्तरोद्भवः। लोकवृत्तानुकारोऽयं नाट्यमित्यभिधीयते॥

उपरोक्त श्लोक नाटक की उस मूल संकल्पना को स्पष्ट करता है, जिसमें विविध भावों और अवस्थाओं के माध्यम से लोक-जीवन का अनुकरण किया जाता है। इसी लोकानुकरण और रसोत्पत्ति के समन्वय से नाटक-लक्षण की शास्त्रीय आधारभूमि निर्मित होती है।

3. नाटक-लक्षणरत्नकोश में नाटक-लक्षण: परिभाषा एवं संरचना

नाटक-लक्षणरत्नकोश संस्कृत नाट्यशास्त्रीय परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। यह ग्रंथ नाट्यशास्त्र की शास्त्रीय परम्परा—विशेषतः नाट्यशास्त्र एवं दशरूपक—से प्रेरणा ग्रहण करते हुए नाटक-लक्षण को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करता है।

3.1 ग्रंथ-परिचय और रचनाकाल/परम्परा

नाटक-लक्षणरत्नकोश संस्कृत नाट्यशास्त्रीय परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें नाटक के स्वरूप, लक्षणों एवं संरचनात्मक तत्त्वों का क्रमबद्ध एवं सूत्रात्मक निरूपण प्राप्त होता है।

ग्रंथ के रचनाकाल एवं ग्रंथकार के विषय में विद्वानों के मध्य कुछ मतभेद पाए जाते हैं, तथापि सामान्यतः इसे मध्यकालीन नाट्यशास्त्रीय परम्परा से सम्बद्ध माना जाता है। इस काल में नाट्यशास्त्रीय चिन्तन का प्रमुख लक्ष्य पूर्ववर्ती सिद्धान्तों का संक्षेप, वर्गीकरण तथा व्यावहारिक उपयोग के लिए पुनर्संरचना रहा है। ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य नाटक की पहचान हेतु आवश्यक एवं अनिवार्य तत्त्वों का निर्धारण करना है **[7]**।

3.2 नाटक-लक्षण की परिभाषाएँ *(मुख्य पद-विश्लेषण)*

नाटक-लक्षणरत्नकोश में नाटक की परिभाषा कुछ ऐसे अनिवार्य तत्त्वों के माध्यम से प्रस्तुत की गई है, जिनके बिना किसी रचना को नाटक नहीं कहा जा सकता। ग्रंथ में सर्वप्रथम वस्तु को नाटक का एक प्रमुख लक्षण माना गया है। वस्तु से अभिप्राय नाटक की कथावस्तु या कथानक से है, जो नाटक की संरचना का आधार बनती है।

नायक को नाटक-लक्षण का दूसरा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना गया है। रस को नाटक की आत्मा के रूप में स्वीकार करते हुए ग्रंथ में उसे नाटक-लक्षण का अनिवार्य तत्त्व माना गया है **[1]**। संधि और वृत्ति नाटक की संरचनात्मक एवं शैलीगत व्यवस्था को निर्धारित करती हैं। अभिनय को नाटक और अन्य काव्य-रूपों के मध्य भेद स्थापित करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षण माना गया है।

इस प्रकार नाटक-लक्षणरत्नकोश में वस्तु, नायक, रस, संधि, वृत्ति एवं अभिनय—इन सभी तत्त्वों का समन्वय नाटक-लक्षण की समग्र संरचना का निर्माण करता है।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 2, March 2026
Impact Factor: 8.2

3.3. वर्गीकरण-प्रणाली

नाटक-लक्षणरत्नकोश में नाटक एवं रूपक का वर्गीकरण केवल नामात्मक न होकर सैद्धान्तिक तथा संरचनात्मक आधारों पर किया गया है। इस दृष्टि से ग्रंथ में वर्गीकरण के अनेक आधार स्वीकार किए गए हैं, जिनमें विषय-वस्तु, नायक-भेद, रस-प्रधानता तथा संरचनात्मक व्यवस्था प्रमुख हैं।

विषय-वस्तु के आधार पर नाटक का वर्गीकरण नाटक की कथात्मक प्रकृति को स्पष्ट करता है। नायक-भेद के आधार पर किया गया वर्गीकरण नाटक के नैतिक एवं आदर्शात्मक पक्ष को रेखांकित करता है। रस-प्रधानता के आधार पर नाटक-वर्गीकरण नाट्यशास्त्र की रस-सिद्धान्त परम्परा से सीधे रूप में जुड़ा हुआ है। संरचना एवं अंकों की व्यवस्था के आधार पर किया गया वर्गीकरण नाटक की तकनीकी एवं संगठनात्मक विशेषताओं को स्पष्ट करता है।

4. नाटकचन्द्रिका में नाटक-लक्षण: परिभाषा एवं वर्गीकरण

नाटकचन्द्रिका संस्कृत नाट्यशास्त्रीय साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित है। यह ग्रंथ नाट्यशास्त्र की पूर्ववर्ती परम्परा से गहराई से जुड़ा हुआ है, किन्तु साथ ही उसमें स्वतंत्र दृष्टिकोण और विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति भी दिखाई देती है।

4.1 ग्रंथ-परिचय और रचनात्मक वैशिष्ट्य

नाटकचन्द्रिका संस्कृत नाट्यशास्त्रीय साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित है, जिसका मुख्य उद्देश्य नाटक की संकल्पना, उसके लक्षणों तथा संरचनात्मक नियमों का व्याख्यात्मक एवं विवेचनात्मक निरूपण करना है।

ग्रंथ का स्थान नाट्यशास्त्रीय परम्परा में एक सेतु के रूप में माना जा सकता है। नाटकचन्द्रिका की रचना ऐसे कालखण्ड में हुई मानी जाती है जब नाट्यशास्त्रीय चिन्तन सूत्रात्मकता से आगे बढ़कर व्याख्यात्मक एवं आलोचनात्मक चरण में प्रवेश कर चुका था। रचनात्मक वैशिष्ट्य की दृष्टि से नाटकचन्द्रिका का प्रमुख गुण उसकी स्पष्ट व्याख्या-शैली है **[8]**।

4.2 परिभाषात्मक ढाँचा

नाटकचन्द्रिका में नाटक की परिभाषा कुछ विशिष्ट संकेत-शब्दों एवं लक्षणात्मक पदों पर आधारित है। यहाँ परिभाषा का उद्देश्य केवल नाटक की पहचान कराना नहीं, अपितु उसके सौन्दर्यशास्त्रीय और संरचनात्मक स्वरूप को स्पष्ट करना भी है।

नाटकचन्द्रिका में परिभाषा के स्तर पर नाटक को लोकानुकरण एवं रसानुभूति—दोनों से जोड़कर देखा गया है। यहाँ नाटक को ऐसी नाट्य-रचना माना गया है, जो अभिनय के माध्यम से दर्शक के चित्त में रस का संचार करे। परिभाषा-भेद की दृष्टि से नाटकचन्द्रिका यह संकेत देती है कि नाटक की परिभाषा परिस्थिति, प्रयोजन एवं नाट्य-रचना के प्रकार के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्त हो सकती है **[1]**।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 2, March 2026
Impact Factor: 8.2

4.3 वर्गीकरण-मानदण्ड

नाटकचन्द्रिका में नाटक एवं रूपक का वर्गीकरण कुछ सुव्यवस्थित नियमों एवं मानदण्डों पर आधारित है। यह वर्गीकरण आंशिक रूप से दशरूपक की परम्परा को आगे बढ़ाता है, किन्तु अनेक स्थलों पर स्वतंत्र विवेचन एवं व्याख्यात्मक विस्तार भी प्रस्तुत करता है।

रस-प्रधानता के आधार पर किया गया वर्गीकरण नाटकचन्द्रिका की एक प्रमुख विशेषता है। संरचनात्मक दृष्टि से नाटकचन्द्रिका में अंकों की संख्या, संधियों की व्यवस्था और कथावस्तु के विकास-क्रम को वर्गीकरण के महत्त्वपूर्ण मानदण्ड माना गया है। समग्र रूप से नाटकचन्द्रिका की वर्गीकरण-प्रणाली दशरूपक की परम्परा से प्रेरित होते हुए भी अपनी व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैली के कारण एक स्वतंत्र पहचान स्थापित करती है।

5. तुलनात्मक विवेचन: समानताएँ, भेद, और निहितार्थ

नाटक-लक्षणरत्नकोश तथा नाटकचन्द्रिका—दोनों ग्रंथ नाटक-लक्षण की शास्त्रीय परम्परा से संबद्ध होते हुए भी परिभाषात्मक स्तर पर अपने-अपने विशिष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं।

5.1 परिभाषा-स्तर पर तुलना

निम्नलिखित तालिका में नाटक की परिभाषा से सम्बन्धित मुख्य तत्त्वों एवं उनकी व्याख्या का तुलनात्मक निरूपण प्रस्तुत किया गया है।

तत्त्व	नाटक-लक्षणरत्नकोश	नाटकचन्द्रिका
रस-प्रधानता	रस को नाटक का अनिवार्य एवं केंद्रीय तत्त्व मानते हुए परिभाषा अपेक्षाकृत संक्षिप्त एवं सूत्रात्मक रूप में प्रस्तुत।	रस को नाटक की आत्मा मानते हुए उसकी उत्पत्ति, प्रभाव एवं प्रयोजन की व्याख्यात्मक प्रस्तुति।
नायक / चरित्र	नायक को नाटक की केंद्रीय सत्ता मानकर उसके गुणों का संक्षिप्त निर्देश।	नायक के चरित्र, सामाजिक स्थिति एवं नैतिक भूमिका का विस्तारपूर्वक विवेचन।
संरचना (अंक / संधि)	अंकों एवं संधियों की व्यवस्था का नियमात्मक एवं संरचनात्मक उल्लेख।	संरचना को नाटक की नाटकीयता से जोड़ते हुए उसकी व्यावहारिक व्याख्या।
अभिनय	अभिनय को नाटक और काव्य में भेद करने वाला आवश्यक लक्षण माना गया है।	अभिनय की भूमिका को रसानुभूति से जोड़कर व्यापक रूप में समझाया गया है।
भाषा / शैली	संवादात्मक एवं नाटकीय भाषा का संक्षिप्त संकेत।	भाषा-शैली को पात्र, रस एवं वृत्ति से संबद्ध कर व्याख्यात्मक दृष्टि।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 2, March 2026 Impact Factor: 8.2

तालिका से स्पष्ट है कि नाटक-लक्षणरत्नकोश की परिभाषा अधिक संक्षिप्त, नियमात्मक एवं लक्षण-सूत्रों पर आधारित है, जबकि नाटकचन्द्रिका उन्हीं लक्षणों को व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक रूप में स्पष्ट करती है।

5.2 वर्गीकरण-स्तर पर तुलना

वर्गीकरण की दृष्टि से दोनों ग्रंथों में सैद्धान्तिक साम्य के साथ-साथ पद्धतिगत भेद भी दृष्टिगोचर होता है। नाटक-लक्षणरत्नकोश में वर्गीकरण अपेक्षाकृत नियम-प्रधान है, जबकि नाटकचन्द्रिका का वर्गीकरण व्याख्या-प्रधान स्वरूप ग्रहण करता है।

नाटक-लक्षणरत्नकोश में विषय-वस्तु, नायक-भेद, रस-प्रधानता तथा संरचनात्मक तत्त्वों के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। इसके विपरीत, नाटकचन्द्रिका में वर्गीकरण के वही आधार व्याख्यात्मक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। इस प्रकार वर्गीकरण-स्तर पर दोनों ग्रंथ एक-दूसरे के विरोधी न होकर परस्पर पूरक प्रतीत होते हैं—एक नियमों का संकलन प्रस्तुत करता है, तो दूसरा उन्हीं नियमों का सौन्दर्यशास्त्रीय औचित्य स्पष्ट करता है।

5.3 विशेष निष्कर्ष

- नाटक-लक्षणरत्नकोश की परिभाषा मुख्यतः रस, नायक एवं संरचना जैसे अनिवार्य तत्त्वों पर केन्द्रित है और उसका दृष्टिकोण नियमात्मक है।
- नाटकचन्द्रिका में वही तत्त्व व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे नाटक की सौन्दर्यात्मक समझ गहरी होती है।
- दोनों ग्रंथ नाटक को रूपकों का प्रधान भेद मानते हैं, जिससे दशरूपक-परम्परा की निरन्तरता सिद्ध होती है।
- वर्गीकरण के स्तर पर नाटक-लक्षणरत्नकोश "संरचना-केन्द्रित" है, जबकि नाटकचन्द्रिका "रस एवं अनुभूति-केन्द्रित" दृष्टिकोण अपनाती है।
- नाटक-लक्षणरत्नकोश नाटक की पहचान के लिए मानक निर्धारित करता है, जबकि नाटकचन्द्रिका उन मानकों की व्यावहारिक एवं आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करती है।
- दोनों ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाटक-लक्षण की अवधारणा स्थिर न होकर विकासशील एवं बहुआयामी रही है।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 2, March 2026
Impact Factor: 8.2

6. उपसंहार

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में नाटक-लक्षणरत्नकोश एवं नाटकचन्द्रिका में प्रतिपादित नाटक-लक्षणों की परिभाषा एवं वर्गीकरण-प्रणालियों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट रूप में सामने आता है कि नाटक-लक्षणरत्नकोश और नाटकचन्द्रिका दोनों ग्रंथ नाटक-लक्षण की शास्त्रीय परम्परा से गहराई से जुड़े हुए हैं, किन्तु उनकी दृष्टि और प्रस्तुति-शैली में मौलिक भेद विद्यमान है।

परिभाषा के स्तर पर दोनों ग्रंथ नाटक को रसानुभूति एवं लोकवृत्तानुकरण से सम्बद्ध मानते हैं, तथा वस्तु, नायक, रस, संधि, वृत्ति एवं अभिनय जैसे तत्त्वों को अनिवार्य स्वीकार करते हैं। इस तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाटक-लक्षण की अवधारणा किसी एक स्थिर सूत्र में सीमित नहीं रही है।

नाटक-लक्षणरत्नकोश नाट्य-रचना के लिए मानक एवं ढाँचा प्रदान करता है, जबकि नाटकचन्द्रिका उन मानकों को व्यावहारिक और सौन्दर्यात्मक दृष्टि से समर्थित करती है। इस प्रकार दोनों ग्रंथ परस्पर पूरक भूमिका निभाते हुए नाटक-लक्षण की समृद्ध परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। आशा है कि यह अध्ययन नाट्यशास्त्र के विद्यार्थियों, शोधार्थियों एवं विद्वानों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

7. संदर्भ-सूची

[1]. भरतमुनि। नाट्यशास्त्र। सम्पा. रामकृष्ण काव्यतीर्थ। चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी **2005**

[2]. धनञ्जय। दशरूपक। सम्पा. बालदेव उपाध्याय। चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी **2001**

[3]. धनिक। अवलोक (दशरूपक-टीका)। सम्पा. गोविन्द शर्मा। चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी **2003**

[4]. विश्वनाथ। साहित्यदर्पण। सम्पा. रामावतार शर्मा। चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली **2007**

[5]. मम्मट। काव्यप्रकाश। सम्पा. जयदेव सिंह। चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी **2004**

[6]. अभिनवगुप्त। अभिनवभारती (नाट्यशास्त्र-व्याख्या)। सम्पा. एम. एम. गोविन्दाचार्य। चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी **1998**

[7]. अज्ञात। नाटक-लक्षणरत्नकोश। सम्पा. पं. शिवदत्त मिश्र। चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी **2006**

[8]. रामचन्द्र। नाटकचन्द्रिका। सम्पा. डॉ. हरिप्रसाद त्रिपाठी। चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी **2008**

[9]. शर्मा, राधावल्लभ। "नाटक-वर्गीकरण की परम्परा: एक समीक्षात्मक अध्ययन"। संस्कृत-समीक्षा, खंड 12, अंक 1, **2016**, पृ. **45-62**।

[10]. मिश्र, कैलाशनाथ। "नाटक-लक्षण की अवधारणा और विकास"। भारतीय नाट्यशास्त्र, खंड 9, अंक 2, **2018** पृ 1-20।